[2008] 5 एस. सी. आर 1185

सीनिवासन

बनाम

पीटर जेबराज और अन्य

(सिविल अपील सं. 854/2001)

4 अप्रैल, 2008

[डॉ. अरिजीत पसायत और पी. सथाशिवम, न्यायाधिपति]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908:

आदेश 1 नियम 10- व्यक्ति प्रतिवादी के रूप में जोड़ा गया- जोडे जाने के प्रभाव की तारीख - सम्मन की तामील से है -सम्पत्ति अंतरण अधिनियम - धारा 52- परिसीमा अधिनियम, 1963 धारा 21.

वाद संपत्ति के मूल मालिक ने 'ए' के साथ विक्रय करार किया, जो अपीलार्थी के पिता थे। हालांकि, उन्होंने संपत्ति को 'एसए' को बेच दिया। 'ए' के द्वारा मूल मालिक के विरुद्ध विक्रय का विनिर्दिष्ट अनुतोष के लिए वाद दायर किया गया। एक प्रार्थना पत्र 'एसए' को प्रतिवादी बनाने हेतु दायर किया गया।

'एसए' ने दो विक्रय विलेखों के तहत प्रत्यर्थी के पिता को संपत्ति बेच दी। 16.4.1984 को 'एसए' को पक्षकार बनाने हेतु आवेदन को अनुमति दी गई थी। 'एसए' को प्रतिवादी के रूप में दर्शाते हुए वादपत्र में संशोधन किया गया था। इसके बाद एक-पक्षीय डिक्री पारित की गई।

प्रत्यर्थी के पिता ने संपत्ति को प्रत्यर्थीगण को बेच दिया। निष्पादन न्यायालय ने 'ए' के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया। 'एसए' ने एक-पक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए व देरीना माफ करने के लिए आवेदन दायर किया, जिसे खारिज कर दिया गया था। इस के खिलाफ अपील और पुनरीक्षण भी खारिज कर दिए गए। 12.12.1994 को प्रत्यर्थियों ने स्वामित्व की घोषणा और निषेधाज्ञा के लिए वाद दायर किया, जिसे डिक्री किया गया। उच्च न्यायालय ने इस आधार पर उक्त आदेश को कायम रखा कि आदेश 1 नियम 10 सी. पी. सी. इस प्रकृति की कार्यवाही पर लागू होता है और 'एसए' ने जब स्वयं द्वारा विक्रय की तो उन्हें पूर्ण मिला था

इसलिए बाद के हस्तांतरणकर्ताओं के पास भी पूर्ण स्वामित्व था और जिस तारीख को एक-पक्षीय डिक्री पारित की गई थी, 'एसए' का संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं था।

इस न्यायालय में अपील में, अपीलार्थी ने तर्क दिया कि एक बार 'एसए' को पक्षकार के रूप में जोडने के लिए अनुमति दी गई तो वह परिसीमा प्रार्थना पत्र पेश करने की तारीख से ही प्रारम्भ हो गयी और इसलिए, प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 को 'एसए' द्वारा की गई विक्रय से कोई स्वामित्व नहीं मिला और यहाँ धारा 52 संपत्ति अंतरण अधिनियम 1882 के प्रभाव का भी उल्लेख किया जाना चाहिए।

अपील खारिज करते हुए,

न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि: 1.1. आदेश 1 नियम 10 सी. पी. सी में महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति "केवल सम्मन की तामील पर" है। यह बहुत स्पष्ट है कि यदि किसी प्रत्यर्थी को उसके पश्चातवर्ती कार्यवाही में शामिल किया जाता है, तो उसके विरूद्ध कार्यवाही को केवल ई की तामील की तारीख से शुरू हुआ माना जाएगा। वह निश्चित रूप से, धारा 22 भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1877 के अधीन है। [पैरा 6] [1189 - ई-एफ]

1.2. उप-नियम (5) में, शब्द "भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1877" को विधानमंडल द्वारा "परिसीमा अधिनियम, 1963" और "धारा 22" को "धारा 21" द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। उक्त प्रावधान किसी भी तरह से अभिव्यक्ति "केवल सम्मन की तामील से शुरू हुआ माना जाएगा", के महत्व को कम नहीं करता है। आदेश 1 नियम 10 (5) वैधानिक रूप से उस तारीख को निर्दिष्ट करता है जिस दिन से पक्षकार के रूप में जोड़ा जाना प्रभावी होता है। आदेश 1 नियम 10 (5) एक मानने योग्य प्रावधान है। [पैरा 7, 9] [1189- जी; 1191-ए-बी]

दुर्गा प्रसाद और अन्य बनाम वी. दीप चंद और अन्य AIR **1954 एससी 75** और *रामप्रसाद दगादुरम बनाम विजयकुमार मोतीलाल हिराखानवाला और अन्य* **1967 (2) एससीजे 805** पर निर्भर किया गया

सिविल अपीलीय न्याय निर्णयः सिविल अपील संख्या 854/2001 से।

मद्रास उच्च न्यायालय के एस. ए. नं. 1805/1999 में निर्णय और आदेश दिनांकित 3.1.2000 से

वी. प्रभाकर, रामजी प्रसाद और रेवती राघवन, अपीलार्थी के लिए

शशि एम. कपिला और ऋषि मल्होत्रा, प्रत्यर्थीगण के लिए

सीनिवासन बनाम पीटर जेबराज और अन्य

[डॉ. अरिजीत पसायत न्यायाधिपति]

न्यायालय का निर्णय **डॉ. अरिजीत पासायत, जे** के द्वारा दिया गया

1. इस अपील में प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा दायर द्वितीय अपील में मद्रास उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले को चुनौती दी गयी है।
2. प्रकरण के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं:

दिनांक 12.2.1978 को शाहुल हमीद और अरुणचलम (अपीलकर्ता के पिता) के बीच विक्रय के लिए एक करार किया गया था। दिनांक 26.5.1978 को शाहुल हमीद ने संपत्ति एक सरस्वती अम्मल को बेच दी जो कार्यवाही में पक्षकार नहीं थी। दिनांक 3.2.1981 को उपरोक्त अरुणाचलम ने विनिर्दिष्ट अनुतोष के लिए शाहुल हमीद के खिलाफ वाद संख्या ओएस 528/1981 दायर किया। प्रारंभ में सरस्वती अम्माल कोई पक्षकार नहीं थी। दिनांक 13.7.1983 को सरस्वती अम्माल को प्रत्यर्थी बनाने के लिए एक आवेदन (आईए संख्या 830/1983) दायर किया गया था। दिनांक 28.1.1984 को सरस्वती अम्मल ने दो विक्रय पत्रों के तहत संपत्ति अन्ना पुष्पम अम्मल और ललिता अम्मल को बेच दी। आईए संख्या 830/1983 में सरस्वती अम्माल को पक्षकार बनाने की अनुमति 16.4.1984 को दी गई थी। दिनांक 17.9.1984 को वादपत्र में संशोधन किया गया जिसमें सरस्वती अम्माल को प्रतिवादी के रूप में दिखाया गया। दिनांक 11.7.1985 को ओएस संख्या 528/1981 में एक-पक्षीय डिक्री पारित की गई थी। दिनांक 30.12.1985 को अन्ना पुष्पम अम्माल ने प्रत्यर्थी संख्या 1 को संपत्ति बेच दी। दिनांक 8.8.1986 को ललिता अम्मल ने संपत्ति प्रत्यर्थी संख्या 2 को बेच दी। दिनांक 10.11.1987 को उपरोक्त ओएस संख्या 528/1981 में डिक्री को निष्पादित करने के लिए निष्पादन याचिका दायर की गई थी। दिनांक 11.1.1988 को निष्पादन न्यायालय ने अरुणाचलम के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया। दिनांक 23.3.1988 को सरस्वती अम्मल द्वारा वाद में एक पक्षीय डिक्री को अपास्त करने की मांग में देरी को माफ करने के लिए आईए संख्या 640/1988 दायर किया गया था। दिनांक 21.7.1989 को उक्त आईए को नोट प्रेस किये जाने के कारण खारिज कर दिया गया। दिनांक 29.7.1989 को एक पक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए द्वितीय आवेदन जो कि आईए 987/1989 था, दायर किया गया था। दिनांक 20.6.1990 को इसे गुणावगुण के आधार पर खारिज कर दिया गया। दिनांक 12.10.1992 को सरस्वती अम्मल द्वारा दायर अपील (सीएमए 3/1991) खारिज कर दी गई।

दिनांक 7.11.1994 को निगरानी याचिका अर्थात सीआरपी संख्या 3139/1994 को खारिज कर दिया गया। दिनांक 12.12.1994 को वाद ओएस संख्या 673/1994 प्रत्यर्थीगण द्वारा स्वामित्व की घोषणा और निषेधाज्ञा के लिए दायर किया गया था। इसी वाद को दिनांक 26.4.1996 को निर्णित किया जाकर डिक्री पारित की गयी थी। अपीलकर्ता द्वारा दायर एक अपील (एएस 23/1999) को दिनांक 24.9.1999 को अनुमति दी गई थी। आक्षेपित निर्णय दिनांक 3.1.2000 द्वारा दायर द्वितीय अपील की अनुमति दी गई थी। उच्च न्यायालय ने माना कि इस प्रकृति की कार्यवाही में आदेश 1 नियम 10 (4 और 5) लागू होता है और माना कि जब अन्ना पुष्पम अम्मल को प्रदर्श ए2 और ए7 के तहत वादी के विक्रेताओं को विक्रय की गई थी, तब सरस्वती अम्मल को पूर्ण स्वामित्व मिला था, जिसने शर्तों के अनुसार इसे वादीगण को बेचा था। पश्चातवर्ती अन्तरिती अन्ना पुष्पम अम्मल और ललिता अम्मल वाद में पक्षकार नहीं हैं और स्वामित्व उनके पास है और वादी को भी पूर्ण स्वामित्व प्राप्त है। जिस तारीख को एक-पक्षीय डिक्री पारित की गई थी, उस दिन सरस्वती अम्मल के पास संपत्ति का कोई अधिकार नहीं था। यह भी माना गया कि प्रदर्श A2 और A7 लंबित वाद के सिद्धांतों से प्रभावित नहीं थे और सरस्वती अम्मल भी वादी के विक्रेताओं को स्वामित्व हस्तांतरण में सक्षम थीं।

3. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि एक बार जब सरस्वती अम्मल को पक्षकार के रूप में जोड़ने के लिए आवेदन की अनुमति दी गई थी, तो वह इसके दायर होने की तारीख से लागू हो गयी और इसलिए, अन्ना पुष्पम अम्मल और ललिता अम्मल को सरस्वती अम्मल द्वारा A2 से A7 के तहत की गई विक्रय से स्वामित्व नहीं दिया गया। यह भी तर्क दिया गया कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम 1882 की धारा 52 (संक्षेप में 'अधिनियम') के प्रभाव पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

4. दूसरी ओर प्रत्यर्थीयों के विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय के आदेश का समर्थन किया।

5. आदेश 1 नियम 10 (जहां तक प्रासंगिक है) और अधिनियम की धारा 52 इस प्रकार है:

आदेश 1 नियम 10(4)/(5)

(4) जहां प्रतिवादी जोड़ा गया है, वहां वादपत्र में संशोधन किया जाएगा- जब एक प्रतिवादी जोड़ा जाता है, तो वादपत्र में, जब तक कि न्यायालय अन्यथा निर्देश न दे, आवश्यक रूप से संशोधित किया जाएगा और सम्मन व वादपत्र की संशोधित प्रतियों की तामील नए प्रतिवादी को और यदि न्यायालय उचित समझे तो मूल प्रतिवादी को दी जाएगी।

(5) भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1877 (1877 का 15) के प्रावधानों के अधीन धारा 22, प्रतिवादी के रूप में जोड़े गए किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही केवल सम्मन की तामील पर शुरू हुई मानी जाएगी।"

अधिनियम की धारा 52

"धारा 52- जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़कर भारत की अन्दर प्राधिकारवान या केंद्र सरकार द्वारा ऐसी सीमाओं से परे स्थापित किसी भी न्यायालय में वाद या कार्यवाही के लंबित रहते हुए, जो दुस्संधिपूर्ण न हो और जिसमें स्थावर संपति का कोई अधिकार प्रत्यक्षतः और विनिर्दिष्टतः प्रश्तगत हो, वह संपति उस वाद या कार्यवाही के किसी भी पक्षकार द्वारा उस न्यायालय के प्रधिकार के अधीन और ऐसे निबंधनों के साथ, जैसे वह अधिरोपित करे अंतरित या व्ययनित की जाने के सिवाय ऐसे अंतरित या अन्यथा व्ययनित नहीं की जा सकती कि उसके किसी अन्य पक्षकार के किसी डिक्री या आदेश के अधीन, जो उसमें दिया जाये, अधिकारों पर प्रभाव पड़े।

6. आदेश 1 नियम 10 में महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति "केवल सम्मन की तामील पर" है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि किसी प्रतिवादी को बाद में पक्षकार बनाया जाता है तो उसके खिलाफ कार्यवाही केवल सम्मन की तामील की तारीख से शुरू हुई मानी जाएगी। यह निश्चित रूप से भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1877 (संक्षेप में 'परिसीमा अधिनियम') की धारा 22 के प्रावधानों के अधीन है।

7. उपनियम (5) में, विधानमंडल द्वारा "भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1877" शब्दों को "परिसीमा अधिनियम, 1963" से तथा "धारा 22" को "धारा 21" से प्रतिस्थापित किया गया है।

उक्त प्रावधान किसी भी तरह से अभिव्यक्ति "केवल सम्मन की सेवा पर शुरू हुआ माना जाएगा" के महत्व को कम नहीं करता है।

8. *दुर्गा प्रसाद एवं अन्य में बनाम दीप चंद और अन्य (एआईआर 1954 एस.सी 75)* इसे इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है: "सबसे पहले, हम इस स्थिति पर पहुंचते हैं कि संपत्ति का स्वामित्व वैध रूप से विक्रेता से हस्तांतरित हो गया है और पश्चातवर्ती अंतरिती के पास रहता है। उसे की गई विक्रय शून्य नहीं है, बल्कि पहले वाले "संविदाकार" के विकल्प पर ही केवल शून्यकरणीय है। स्वामित्व के रूप में विक्रेता के पास पर अब कोई अधिकार नहीं रह गया है, तो उसे उक्त अधिकार वादी हस्तांतरित करने के लिये बाध्य करना ठोस दृष्टिकोण से अतार्किक होगा, जब तक कि बाद की विक्रय को रद्द करके या बाद के क्रेता से पुनर्संवहन द्वारा स्वामित्व को उसे वापस देने के लिए कदम नहीं उठाए जाते। हम ऐसे किसी मामले के बारे में नहीं जानते हैं जिसमें विक्रेता को पुनर्भुगतान का आदेश दिया गया हो, लेकिन काली चरण बनाम जनक देव (एआईआर 1932 ईलाहबाद 694.) मामले में सुलेमान सीजे ने दूसरी प्रक्रिया अपनायी । उन्होंने विक्रय के अनुबंध के अनुसार विक्रेता द्वारा वादी को की गई बाद की विक्रय और हस्तांतरण को रद्द करने का निर्देश दिया, जिसमें वादी ने विनिर्दिष्ट अनुतोष की मांग की थी। हालाँकि यह तर्कसंगत लगता है लेकिन इस पर आपत्ति यह है कि यह विक्रेता और उसके बाद के क्रेता के बीच जटिलता पैदा कर सकता है। उनके बीच विलेख में बाध्यता हो सकती हैं, जिससे उनके विलेख को रद्द करना असाम्यिक व्यवधान होगा। तदनुसार, हमें नहीं लगता कि यह एक वांछनीय समाधान है।

xxxxxx

हमारी राय में, डिक्री का उचित रूप विक्रेता और वादी के बीच अनुबंध के विनिर्दिष्ट अनुतोष को निर्देशित करना है और बाद के हस्तांतरणकर्ता को हस्तांतरण की कार्यवाही में शामिल होने का निर्देश देना है ताकि वादी को उसके पास मौजूद स्वामित्व हस्तांतरित किया जा सके। वह वादी

और उसके विक्रेता के बीच बनी किसी विशेष संविदा में शामिल नहीं होता है; उसका कार्य केवल वादी को अपना स्वामित्व सौंपना होता है। काफिलाद्दीन बनाम समीराद्दीन (एआईआर 1931 कलकता 67.) में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा यही प्रक्रिया अपनाई गई थी और यह अंग्रेजी प्रथा प्रतीत होती है। विनिर्दिष्ट अनुतोष पर फ्राई देखें, छठा संस्करण, पृष्ठ 90, अनुच्छेद 207; पॉटर बनाम सैंडर्स (67 ईआर 1057.) भी देखें, हम तदनुसार निर्देशित करते हैं।"

9. उपरोक्त स्थिति होने के कारण, उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण सही था। हालाँकि इस न्यायालय के फैसलेरामप्रसाद दगडुराम बनाम विजयकुमार मोतीलाल हिराखानावाला और अन्य [1967 (2) एससीजे 805] पर मजबूत निर्भरता रखी गई थी परंतु इसकी यहां कोई प्रयोज्यता नहीं है क्योंकि यह वादी के मामले से संबंधित है। मौजूदा मामले में, यह प्रत्यर्थी से संबंधित है और आदेश 1 नियम 10(5) वैधानिक रूप से उस तारीख को निर्दिष्ट करता है जिस दिन जोड़ा जाना प्रभावी होता है। आदेश 1 नियम 10(5) एक मान्य प्रावधान है।

10. ऐसी स्थिती में, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में कोई कमी नहीं है, जिसके लिये हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

11. खर्चे के संबंध में बिना किसी आदेश के अपील खारिज की जाती है।

अपील खारिज की गई।

अनुवाद कर्ता - पूरण कुमार शर्मा
(न्यायिक अधिकारी)